जर्मनीमें जैनधर्मके कुछ अध्येता

डा० जगदीश चन्द्र जैन, बम्बई

उन्नीसवी शताब्दीका आरम्भ यूरोपमें ज्ञान-विज्ञानकी शताब्दीका युग रहा है। यह समय था जब जर्मनीके फ्रीडरीख श्लीगलको संस्कृत पढ़नेका शौक हुआ और उन्होंने पेरिस पहुँच कर हिन्दुस्तानसे लौटे हुए किसी सैनिकसे संस्कृतका अध्ययन किया। आगे चलकर इन्होंने द लैंगवेजेज एण्ड विजडम ऑफ द हिन्दूज (हिन्दूओंकी भाषायें और प्रज्ञा) नामक पुस्तक प्रकाशित कर भारतकी प्राचीन संस्कृतसे यूरोप वासियोंको अवगत कराया। इसी समय फ्रीडरीखके लघु भ्राता औगुस्ट विलहेल्म श्लीगलने अपने ज्येष्ठ भ्रातासे प्रेरणा पाकर संस्कृतका तुलनात्मक गम्भीर अध्ययन किया और वे बॉन विश्वविद्यालयमें १८१८ में स्थापित भारतीय विद्या चेयरके सर्वप्रथम प्रोफेसर नियुक्त किये गये।

मैक्समूलर इस शताब्दीके भारतीय विद्याके एक महान पण्डित हो गये हैं जिन्होंने भारतकी सांस्कृतिक देनको सारे यूरोपमें उजागर किया। ऋग्वेदका सायण भाष्यके साथ उन्होंने सर्वप्रथम नागरी लिप्यन्तर किया और जर्मन भाषामें उसका अनुवाद प्रकाशित किया। इंग्लैण्डमें सिविल सर्विसमें जानेवाले अंग्रेज नवयुवकोंके मार्गदर्शनके लिये उन्होंने कैम्ब्रिज लैक्चर्स दिये जो इण्डिया, ह्वाट इट कैन टीच अस (भारत हमें क्या सिखा सकता है) नामसे प्रकाशित हुए। 'सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट' सीरीजके सम्पादनका श्रेय मैक्समूलरको ही है जिसके अन्तर्गत भारतीय विद्यासे सम्बन्धित अनेकानेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुए।

यूरोपमें जैनविद्याके अध्येताओंमें सर्वप्रथम हरमन याकोबी (१८५०-१९३७)का नाम लिया जायेगा। वे अलब्रेख्त बेबरके शिष्य थे जिन्होंने सर्वप्रथम मूलरूपमें जैन आगमोंका अध्ययन किया था। याकोबीने वराहमिहिरके लघु जातक पर शोध प्रबन्ध लिखकर पी० एच-डी० प्राप्त की। केवल २३ वर्षकी अवस्थामें जैन हस्तलिखित प्रतियोंकी खोजमें वे भारत आये और वापिस लौटकर उन्होंने 'सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट' सीरीजमें आचारांग और कल्पसूत्र तथा सूत्रकतांग और उत्तराध्ययन आगमोंका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। निःसन्देह इन ग्रन्थोंके अनुवादसे देश-विदेशमें जैनविद्याके प्रचारमें अपूर्व सफलता मिली। यूरोपके विद्वानोमें जैनधर्म और बौद्धधर्मको लेकर अनेक भ्रांतियाँ और वादविवाद चल रहे थे। उस समय याकोबीने जैन-धर्म और बौद्धधर्म ग्रन्थोंके तुलनात्मक अध्ययन द्वारा बौद्धधर्मके पूर्व जैनधर्मका अस्तित्व सिद्ध करके इन भ्रांतियों और विवादोंको निर्मूल करार दिया।

जैन आगमोंके अतिरिक्त, प्राकृत तथा साहित्यके क्षेत्रमें उन्होंने पथ प्रदर्शनका कार्य किया। याकोबीने जैन आगम साहित्यकी टीकाओंमेंसे कुछ महत्त्वपूर्ण कथाओंको चुनकर आउसगेवेल्टे ऐरजेकलुन्गन इम महाराष्ट्री (सेलेक्टेड स्टोरीज इन महाराष्ट्री) नामसे प्रकाशित की। इन कथाओंके सम्पादनके संग्रहमें प्राकृतका व्याकरण और शब्दकोष भी दिया गया।

१९१४ में याकाबीने दूसरी बार भारतकी यात्रा की। अबकी बार हस्तलिखित जैन ग्रन्थोंकी खोजमें वे गुजरात और कठियावाड़की ओर गये। स्वदेश वापिस लौटकर उन्होंने भविसत्तकहा और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सणक्कुमारचरिउ नामक महत्वपूर्ण अप्रभंश ग्रन्थोंका सम्पादन कर उन्हें प्रकाशित किया। इस यात्रामें कलकत्ता विश्वविद्यालयने उन्हें डाक्टर आफ लैटर्स और जैन समाजने जैनदर्शन दिवाकरकी पदवीसे सम्मानित किया।

यूरोपमें प्राकृत-अध्ययनके पुरस्कर्ताओंमें रिचर्ड पिशल (१८४९-१९०८)का नाम भी काफी आगे रहेगा। पिशल ए० एफ० स्टेन्त्लरके शिष्य थे जिनकी 'एलिमेण्टरी ग्रामर आफ संस्कृत' आज भी जर्मनीमें संस्कृत सीखनेके लिये मानक पुस्तक मानी जाती है। प्राकृतके विद्वान वेबरके लैक्चरोंका लाभ भी पिशलको मिला था। उनका कथन था कि संस्कृतके अध्ययनके लिये भाषाविज्ञानका ज्ञान व अध्ययन आवश्यक है और उनके अनुसार यूरोपके अधिकांश विद्वान इस ज्ञानसे वंचित थे।

ग्रामेटीक डेर प्राकृत स्प्रशेन (द ग्रामर आफ प्राकृत लैन्ग्वेजेज) पिशलका एक विशाल स्मारक ग्रन्थ है जिसे उन्होंने वर्षोंके कठिन परिश्रमके बाद अप्रकाशित प्राकृत साहित्यकी सैकड़ों हस्तलिखित पांडुलिपियोंके आधारसे तैयार किया था। जिसमें उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकारकी प्राकृतोंका विश्लेषण कर इन भाषाओंके नियमोंका विवेचन किया। मध्ययुगीन आर्यभाषाओंके अनुपम कोष हेमचन्द्रकी देशीनाममालाका भी बुहलरके साथ मिलकर, पिशलने आलोचनात्मक सम्पादन कर एक महान कार्य सम्पन्न किया। इन ग्रन्थोंमें प्राकृत एवं अपभ्रंशके ऐसे अनेकानेक शब्दोंका संग्रह किया है जो शब्द क्वचित् ही अन्यत्र उपलब्ध होते हैं।

संयोगकी बात है कि याकोबी और पिशल—ये दोनों ही विद्वान पश्चिम जर्ननीके कील विश्व-विद्यालयमें प्रोफेसर रह चुके हैं जहाँ उन्होंने अपनी-अपनी रचनाएँ समाप्त कीं।

अर्न्स्ट लायमान (१८५९-१९३१) बेबरके शिष्य रहे हैं। उन्होंने जैन आगमों पर लिखित निर्युक्ति और चूर्णि साहित्यका विशेष रूपसे अध्ययन किया। यह साहित्य अब तक विद्वानोंकी दृष्टिसे नहीं गुजरा है। वे स्ट्रॉसबर्गमें अध्यापन करते थे और यहाँकी लाइब्रेरीमें उन्हें इन ग्रन्थोंकी पांडुलिपियोंके अध्ययन करनेका अवसर मिला। औपपातिकसूत्रका उन्होंने आलोचनात्मक संस्करण प्रकाशित किया। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि लायमान द्वारा सम्पादित प्राकृत जैन आगम साहित्य पिशलके प्राकृत भाषाओंके अध्ययनमें विशेष सहायक सिद्ध हुआ। १८९७ में उनका 'आवश्यक-एरजेलुंगेज' (आवश्यक स्टोरीज) प्रकाशित हुआ। पर इसके केवल चार फर्मे ही छप सके। तत्पश्चात् वे वीवरसिष्ट डी आवश्यक लिटरेचर (सर्वे आव दि आवश्यक लिटरेचर)में लग गये जो १९३४ में हैम्बुर्गसे प्रकाशित हुआ।

वाल्टर शूब्रिंग जैनधर्मके एक प्रकाण्ड पण्डित हो गये हैं जो नौरवेके सुप्रसिद्ध विद्वान स्टेनकोनोके चले जाने पर हैम्बुर्ग विश्वविद्यालयमें भारतीय विद्याके प्रोफेसर नियुक्त हुए। उन्होंने कल्प, निशीथ और व्यवहारसूत्र नामक छेदसूत्रोंका विद्वत्तापूर्ण सम्पादन करनेके अतिरिक्त महानिशीथसूत्र पर कार्य किया तथा आचारांगसूत्रका सम्पादन और व्रर्टे महावीर (वर्क आव महावीर) नामसे जर्मन अनुवाद प्रकाशित किया। उनका दूसरा महत्वपूर्ण उपयोगी ग्रन्थ, डी लेहरे डेर जैनाज है जो दि डॉक्ट्रीन्स आव दी जैनाजके नामसे अंग्रेजीमें १९३२ में दिल्लीसे प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थमें लेखकने श्वेताम्बर जैन आगम ग्रन्थोंके आधारसे जैनधर्म सम्बन्धी मान्यताओंका प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया। जर्मनीमें किसी विद्वान व्यक्तिके निधनके पश्चात् उसकी संक्षिप्त जीवनी तथा उसकी रचनाओंकी सूचना प्रकाशित करनेकी प्रथा हैं किन्तु महामना शूब्रिंग यह कह गये थे कि उनकी मृत्युके बाद उनके सम्बन्धमें कुछ न लिखा जाय।

जे० इर्टल (१८७२-१९५५) भारतीय विद्याके एक सुप्रसिद्ध विद्वान हो गये हैं जो कथा साहित्यके विशेषज्ञ थे। उन्होंने अपना समस्त जीवन पञ्चतन्त्रके अध्ययनके लिये समर्पित कर दिया। वे जैन कथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहित्यकी ओर विशेष रूपसे आकर्षित हुए थे। "ऑन दी लिटरेचर आफ दी श्वेताम्बर जैनाज इन गुजरात" नामक अपनी लघु किन्तु अत्यन्त सारगर्भित रचनामें उन्होंने जैन कथाओंकी सराहना करते हुए लिखा है कि यदि जैन लेखक इस ओर प्रवृत्त न हुए होते तो भारतकी अनेक कथायें विलुप्त हो जातीं।

हैल्मुथ फोन ग्लाजनेप (१८९१-१९६३) टयुबिन्गन विश्वविद्यालयमें धर्मोंके इतिहासके प्रोफेसर रहे हैं। वे धर्मके पण्डित थे। याकोबीके प्रमुख शिष्योंमें थे और उन्होंने लोकप्रिय शैलीमें जैनधर्मके सम्बन्धमें अनेक पुस्तकें लिखी हैं जिनके उद्धरण आज भी दिये जाते हैं। उन्होंने डेर जैनिसगुस (दि जैनिज्म) और डि लेहरे फोम कर्मन इन डेर फिलोसोफी जैनाज (दि डॉक्ट्रीन आव कर्म इन जैन फिलोसोफी) नामक महत्वपूर्ण रचनाएँ प्रस्तुत की। पहली पुस्तक 'जैनधर्म'के नामसे गुजरातीमें और दूसरी पुस्तकका अनुवाद अंग्रजी तथा हिन्दीमें प्रकाशित हुआ। उनकी इण्डिया, ऐज सीन वाई जर्मन थिंकर्स (भारत, जर्मन विचारकोंकी दृष्टिमें) नामक पुस्तक १९६० में प्रकाशित हुई।

ग्लाजनेपने अनेक बार भारतकी और अनेक विद्वानोंसे सम्पर्क स्थापित किया। उनके दिल्ली आगमन पर जैन समाजने उनका स्वागत किया। उनकी एक निजी लाइब्रेरी थी जो द्वितीय विश्व युद्धमें बम वर्षाके कारण जलकर ध्वस्त हो गई।

लुडविग आल्सडोर्फ—(१९०४-१९७८) जर्मनीके एक बहुश्रुत प्रतिभाशाली मनीषी थे जिनका निधन अभी कुछ समय पूर्व २८ मार्च १९६८ को हुआ। उनके लिये भारतीय विद्या कोई सीमित विषय नहीं था। इसमें जैनधर्म, बौद्धधर्म, वेदविद्या, अशोकीय शिलालेख, मध्यकालीन भारतीय भाषायें, भारतीय साहित्य, भारतीय कला तथा आधुनिक भारतीय इतिहास आदिका भी समावेश था। आल्सडोर्फ इलाहाबाद विश्वविद्यालयमें जर्मन भाषाके अध्यापक रह चुके हैं। यहाँ रहते हुये उन्होंने संस्कृतके एक गुरुजीसे संस्कृत का अध्ययन किया था। उसके बाद अनेक बार उन्हें भारत यात्राका अवसर मिला। जितनी बार वे भारत आये, उतनी ही बार अपने ज्ञानमें वृद्धि करनेके लिए कुछ-न-कुछ समेट कर अवश्य ले गये। अनेक प्रसंग ऐसे उपस्थित हुये जबकि पंडित लोग अनार्य समझकर, उनके मन्दिर प्रवेश पर रोक लगानेकी कोशिश करते। लेकिन वे झटसे संस्कृतका कोई श्लोक सुनाकर अपना आर्यत्व सिद्ध करनेसे न चूकते। आल्सडोर्फने अपने राजस्थान, जैसलमेर आदिकी यात्राओंके रोचक वृत्तांत प्रकाशित किये हैं।

आल्सडोर्फने विद्यार्थी अवस्थामें जर्मन विश्वविद्यालयोंमें भारतीय विद्या, तुलनात्मक भाषाशास्त्र, अरबी, फारसी, आदिका अध्ययन किया। वे लायमानके सम्पर्कमें आये और याकोबीसे उन्होंने जैनधर्मका अध्ययन करनेकी अभूत पूर्व प्रेरणा प्राप्त की। यह याकोबीकी प्रेरणाका ही फल था कि वे पुष्पदन्तके महापुराण नामक अपभ्रंश ग्रन्थ पर काम करनेके लिए प्रवृत्त हुए जो विस्तृत भूमिका आदिके साथ १९३७ में जर्मनमें प्रकाशित हुआ। आल्सडोर्फ शूब्रिगको अपना गुरु मानते थे। जब तक वे जीवित रहे, उनके गुरुका चित्र उनके कक्षकी शोभा बढ़ाता रहा। उन्होंने सोमप्रभसूरिके कुमारवालपडिबोह नामक अप्रभ्रंश ग्रंथ पर शोध प्रबन्ध लिख कर पी-एच० डी० प्राप्त की।

१९५० में शूब्रिगका निधन हो जाने पर वे हैम्बुर्ग विश्वविद्यालयमें भारतीय विद्या विभागके अध्यक्ष नियुक्त किये गये और सेवानिवृत्त होनेके बाद भी अन्तिम समय तक कोई न कोई शोधकार्य करते रहे।

अपने जर्मनी आवास कालमें इन पंक्तियोंके लेखकको आल्सडोर्फसे भेंट करनेका अनेक बार अवसर मिला और हर बार उनकी अलौकिक प्रतिभाकी छाप मन पर पड़ी। किसी भी विषय पर उनसे चर्चा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चलाइये, चलते फिरते एक विश्वकोशकी भाँति उनका ज्ञान प्रतीत होता रहा। उन्होंने भी संघदासगणि कृत वसुदेवहिंडि जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थकी ओर विश्वके विद्वानोंका ध्यान आकर्षित किया और इस बातकी बड़े जोरसे स्थापनाकी कि यह अभूतपूर्व रचना पैशाची प्राकृतमें लिखित गुणाढ्यकी नष्ट हुई बड्ढककहा (वृहत्कथा)का जैन रूपान्तर है। उनकी वसुदेवहिंडिकी निजी प्रति देखनेका मुझे अवसर मिला है जो पाठान्तरों एवं जगह-जगह अंकित किए हुए नोट्ससे रंगी पड़ी थी। उनका कहना था कि दुर्भाग्यसे इस ग्रन्थकी अन्य कोई पांडुलिपि मिलना तो अब दुर्लभ है किन्तु अनेक स्थलोंको प्रकाशित ग्रन्थके फुटनोट्समें दिये हुए पाठान्तरोंकी सहायतासे अधिक सुचारु रूपसे सम्पादित किया जाना सम्भव है। अपने लेखों और निबन्धोंमें वे बड़ेसे बड़े विद्वानकी भी समुचित आलोचना करनेसे नहीं हिचकिचाते। उन्होंने अवसर आनेपर याकोबी, पिशल, ऐडगर्टन आदि जर्मनीके सुविख्यात विद्वानोंके कथनको अनुपयुक्त ठहराया।

१९७४ में क्लाइने श्रिफ्टेन (लघुनिबन्ध) नामक ७६२ पृष्ठोंका एक ग्रन्थ ग्लाजनप फाउण्डेशनकी ओरसे प्रकाशित हुआ है जिसमें आल्सडोर्फके लेखों, भाषणों एवं समीक्षा टिप्पणियोंका संग्रह है। इसमें दृष्टिवादसूत्रकी विषय-सूची (मूलतः यह स्वर्गीय मुनि जिनविजयजीके अभिनन्दन ग्रन्थके लिए लिखा गया था। यह जर्मन स्कालर्स आफ इण्डिया, जिल्द १ पृ० १-५ में भी प्रकाशित है) के सम्बन्धके एक महत्व-पूर्ण लेख संग्रहीत हैं। मूडबिद्रीसे प्राप्त हुए षट्खंडागम साहित्यके सम्बन्धमें स्वर्गीय डॉक्टर ए० एन० उपाध्येने उल्लेख किया था कि कर्मसिद्धान्तकी गूढ़ताके कारण पूर्व ग्रन्थोंका पठन-पाठन बहुत समय तक अवछिन्न रहा जिससे वे दुष्प्राप्य हो गये। आल्सडोर्फने इस कथनसे अपनी असहमति व्यक्त करते हुए प्रति-पादित किया कि यह बात तो श्वेताम्बरीय कर्मग्रन्थोंके सम्बन्धमें भी की जा सकती है। फिर भी उनका अध्ययन अध्यापन क्यों जारी रहा और वे क्यों दुष्प्राप्य नहीं हुए। इस संग्रहके एक अन्य महत्वपूर्ण निबन्धमें आल्सडोर्फने वैताढ्य, शब्दकी व्युत्पत्ति वेदार्धसे प्रतिपादित की है : वे (य) अड्ढ = वेइअड्ढ = वैदियड्ढ = वेदार्ध। इसे उनकी विषयकी पकड़ और सूझ-बूझके सिवाय और क्या कहा जा सकता है। तात्पर्य यह है कि आल्सडोर्फकी बातसे कोई सहमत हो या नहीं, वे अपने कथनका सचोट और स-प्रमाण समर्थन करनेमें सक्षम थे। वे अन्तराष्ट्रीय ख्यातिके कितने औरियंटियल रिसर्च पत्र-पत्रिकाओंसे सम्बद्ध थे और इनमें उन्होंने विविध विषयोंपर लिखे हुए कितने ही महत्वपूर्ण ग्रन्थोंकी समीक्षायें प्रकाशित की थीं। 'क्रिटिकल पालि डिक्शनरी'के वे प्रमुख सम्पादक थे जिसका प्रारम्भ सुप्रसिद्ध वि० ट्रेकनेरके सम्पादकत्वमें हुआ था।

विदेशी विद्वानों द्वारा भारतीय दर्शन एवं धर्म सम्बन्धी अभिमतोंको हम इतना अधिक महत्व क्यों देते आये हैं? वे यथासम्भव तटस्थ रहकर किसी विषयका वस्तुगत विश्लेषण प्रस्तुत करनेका प्रयत्न करते हैं। अपनी व्यक्तिगत मान्यताओं, विचारों एवं विश्वासोंका उसमें मिश्रण नहीं करते हैं।

संस्कृत, प्राकृत अथवा अपभ्रंशकी रचनाओंका अध्ययन करनेके पूर्व वे इन भाषाओंके व्याकरण, कोश, आदिका ठोस ज्ञान प्राप्त करते हैं। तुलनात्मक भाषा विज्ञान उनके अध्ययनमें एक विशिष्ट स्थान रखता है। यूरोपकी आधुनिक भाषाओंमें अंग्रेजी, फ्रेंच जर्मन, डच आदिका ज्ञान उनके शोधकार्यमें सहायक होता है। जैनधर्मका अध्ययन करनेवालोंके लिए जर्मन भाषाका ज्ञान आवश्यक है। इस भाषामें कितने ही महत्वपूर्ण और उपयोगी ग्रन्थ एवं लेख ऐसे हैं जिनका अंग्रेजी भाषान्तर अभी तक नहीं हुआ। आजके युगमें तुलनात्मक अध्ययनकी आवश्यकता है। उदारणार्थ, जैन अध्ययनके लिए जैनधर्म और दर्शनका अध्ययन ही पर्याप्त नहीं, वैदिक धर्म, बौद्धधर्म तथा यूरोपीय भाषाओंमें हुए शोधका ज्ञान भी आवश्यक है। तुलनाके लिए बौद्धधर्मका अध्ययन तो आवश्यक है ही। इस अध्ययनको व्यवस्थित करनेके लिए चुने हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन ग्रन्थोंका चुने हुए जैन विद्वानों द्वारा आधुनिक पद्धतिसे सम्पादन किये जानेकी आवश्यकता है। प्रकाशित ग्रन्थोंकी आलोचनात्मक निर्भीक समीक्षाकी आवश्यकता है। इस सम्बन्धमें जैनोंके सभी सम्प्रदायोंके विद्वानों द्वारा तैयार की गयी सम्मिलित योजना कार्यकारी हो सकती है। शोध कार्यको सफलतापूर्वक सम्पन्न करनेके लिए पुस्तकालय अथवा पुस्तकालयोंकी आवश्यकता है जहाँ शोध सम्बन्धी हर प्रकारकी सुविधाएँ उपलब्ध हो सकें। ये भारतके कुछ केन्द्रीय स्थानोंमें स्थापित किये जाने चाहिये तथा विद्यमान सुविधाओंका आधुनिकीकरण किया जाय। अन्तमें, एक महत्त्वपूर्ण बात और कहना चाहता हूँ। वह यह है कि यथार्थतासे सम्बन्ध स्थापित करनेका प्रयत्न किया जाये। विषयोंका चुनाव इस प्रकार किया जाय जिससे शोध छात्र प्रोत्साहित हों और आगे चलकर दिशा भी ग्रहण कर सकें एवं जैन विद्याओंको प्रकाशित कर सकें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org